कृष्णमूर्ति की शिक्षा दृष्टि और उसकी प्रासंगिकता

*सुजाता साहा**

जे. कृष्णमूर्ति गत शताब्दी के महान् चिंतकों में अग्रगण्य हैं। उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में भी विचार किया है। उनके दर्शन पर आधारित कई शिक्षण-संस्थाएँ देश-विदेश में सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं। इस लेख में कृष्णमूर्ति के शिक्षा-दर्शन के विविध आयामों की व्यवस्थित विवेचना करने का प्रयास किया गया है। साथ ही इस आधार पर इस बहुमूल्य दर्शन की प्रासंगिकता को भी आलेकित किया गया है।

बीसवीं शताब्दी के सुख्यात दार्शनिक जे. कृष्णमूर्ति (1895-1986) ने अपने मौलिक चिंतन से शिक्षा दर्शन को भी समृद्ध किया है। उन्होंने विश्व के विभिन्न भागों की निरंतर यात्राएँ कीं तथा सत्य के प्रेमी एवं अन्वेषी के रूप में अपने विचारों से जगत् को आंदोलित किया। अपने शैक्षिक विचारों को जीवंत रूप देने हेतु उन्होंने विशिष्ट प्रकार के विद्यालयों की स्थापना की प्रेरणा दी।

शिक्षा-दर्शन

सूचना-अर्जन व्यक्ति को यांत्रिक बनाता है, जबकि अधिगम मन-मस्तिष्क को ताजगी से भर देता है। जीवन के पाठ की समझ प्राप्त करना ही अधिगम है। परम्परागत शिक्षा राष्ट्रीय, नागरिक या आर्थिक हितों की पूर्ति करती है। किन्तु वास्तविक शिक्षा शांति, सुख, अभ्यंतर समृद्धि और चतुर्दिक व्याप्त सौन्दर्य के अवलोकन की क्षमता विकसित करती है।

कृष्णमूर्ति के अनुसार, शिक्षा केवल पुस्तकों से सीखना, किन्हीं तथ्यों को कण्ठस्थ करना तथा समाज के प्रवाह में बहना नहीं है। यह केवल मन को प्रशिक्षित करना भी नहीं है। प्रशिक्षण कार्यकुशलता तो उत्पन्न करता है, किन्तु नवीन का आविष्कार नहीं करता। वस्तुतः शिक्षा समग्र मन के विकास में मनुष्यों की सहायता करने का एक महत्त्वपूर्ण, रचनात्मक और सच्चा मार्ग है, जो व्यक्ति को स्पष्ट अवलोकन करने में सक्षम बनाती है। यह मानव-जीवन में

**वरिष्ठ प्रवक्ता*, शिक्षा विभाग, वसन्त महिला महाविद्यालय, कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन इण्डिया राजघाट फोर्ट, वाराणसी-221001(उ.प्र)

विद्यमान विभिन्न प्रकार के संबंधों की समझ प्रदान करती है।

अर्थात् शिक्षा जीवन के समग्र अर्थ का बोध कराती है। संक्षेप में, शिक्षा जीवन की गतिविधियों से सीखने की कला है। उचित शिक्षा स्वयं अपने परिवर्तन से ही घटित होती है तथा व्यक्तित्व के सभी पक्षों का समन्वित विकास करती है। यह आंतरिक एवं बाह्य बाध्यताओं से स्वतंत्रता प्रदान करती है। ऐसी स्वाधीनता में ही प्रेम और अच्छाई पुष्पित हो सकते हैं और समस्त के साथ सहयोग संभव हो पाता है।

शिक्षा के उद्देश्य

1. सत्य की समझ प्राप्त करना

सत्य तर्क का विषय नहीं, अपितु प्रत्यक्ष प्रत्यक्षीकरण है। यह स्वयं किया गया शुद्ध निरीक्षण तथा चयनरहित सजगता है, जहाँ निरीक्षणकर्त्ता ही निरीक्षित हो जाता है। यह जीवन में निहित है। जीवन के दु:खों से मुक्ति ही सत्य है। इसे बौद्धिक विश्लेषण द्वारा नहीं, अपितु मन के निरीक्षण द्वारा स्वप्रयास से ही समझा जा सकता है। साथ ही, ब्रह्माण्ड में व्याप्त संबंधों को स्वतंत्र मन से समझना भी अपेक्षित है। स्वतंत्र मन वह है, जहाँ 'मैं' लुप्त हो गया हो। हमारी सभी आकाँक्षाएँ, अस्वीकृतियाँ, अनुभव, मूल्याँकन आदि 'मैं' में ही केन्द्रित होते हैं। इस 'मैं' से मुक्ति के लिए प्रत्येक घटना को उसकी पूर्णता में देखना चाहिए, तभी हम सत्य के निकट पहुँच सकते हैं।

कृष्णमूर्ति इसी संसार की विविध प्राकृतिक सामाजिक और मनोवैज्ञानिक वास्तविकताओं से विद्यार्थियों को परिचित कराना चाहते हैं। प्रकृति के विभिन्न उपादानों, सामाजिक संघर्षों, मानसिक यथार्थ, जैसे-ईर्ष्या, आकाँक्षाओं, भय, चिन्ताओं इत्यादि को जान-समझकर विद्यार्थी यथार्थ के बीच विकसित होते जगत् की समस्याओं को समझेंगे तथा एक नवीन विश्व का सृजन करने में समर्थ होंगे।

2. मनोवैज्ञानिक स्वाधीनता की उपलब्धि

स्वतंत्रता की अनुभूति से प्रत्यक्षीकरण स्पष्ट बनता है, सत्य का बोध होता है, जिससे सूक्ष्म आंतरिक रूपांतरण होता है। शिक्षा में प्रारम्भ से ही पूर्णता का उपागम अपनाना चाहिए, जिसके अन्तर्गत मानव-मन के मूलभूत मनोवैज्ञानिक सृजनात्मक रूपांतरण पर ध्यान देना सम्मिलित है। शिक्षा का कार्य मनोवैज्ञानिक बाधाओं का अन्वेषण करना है, न कि व्यवहार के नवीन प्रारूपों तथा विचार के नवीन स्वरूपों का बालक पर आरोपण करना।

व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में अनंत समस्याएँ होती हैं। मनोवैज्ञानिक भय से मुक्ति के लिए शिक्षा द्वारा मनोवैज्ञानिक क्रान्ति उत्पन्न करना आवश्यक है अर्थात् भयमुक्त, बुद्धिमान, संवेदनशील, स्वयं के प्रति पूर्णत: जागरुक, शांत, सहनशील, उत्सुक, अनुबंधन और आसक्ति से मुक्त बालक का ही सुसमन्वित व्यक्ति के रूप में विकास हो सकता है। ऐसे व्यक्ति का मन असाधारण रूप से जीवन्त होगा तथा वह दूसरों में भी ऐसे ही रूपांतरण को प्रोत्साहित करेगा।

3. स्पष्ट निरीक्षण की क्षमता विकसित करना

कृष्णमूर्ति के मत में, अधिगम विशुद्ध निरीक्षण है। शिक्षा व्यवहार में परिमार्जन के स्थान पर सुनने

और देखने की कला है ताकि बालक बाह्य जगत् और इच्छाओं और विचारों के आंतरिक जगत को समझ सके। अत: बालक में स्वयं के बाहर और स्वयं के अन्दर घटित होने वाली घटनाओं के सूक्ष्म निरीक्षण की योग्यता विकसित करना शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य होना चाहिए। इसमें संवेदी अनुभव और मन के अनुभव दोनों की ही भूमिका होती है। अवलोकन और श्रवण निरीक्षण के उपकरण हैं, जो पुस्तकीय ज्ञान से कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। मन का पूर्ण विकास वस्तुनिष्ठ, निर्वैयक्तिक तथा बिना किसी विचार और अनुबंधन के आरोपण के स्पष्ट प्रत्यक्षीकरण द्वारा ही संभव है।

व्यक्ति में वस्तु को उसकी यथास्थिति में समझकर समस्याओं को सुलझाने की तत्परता होनी चाहिए। इसके लिए घटनाओं का स्वयं एवं अन्य सभी के संदर्भ में बिना अवरोध और पूर्वाग्रह के निरीक्षण करना आवश्यक है। तभी स्वयं तथा परिस्थिति की अधिक गहरी समझ प्राप्त होगी। उसे जीवन के सुख और दु:ख, क्षुद्रता और व्यापकता सबको समझने की आवश्यकता है।

4. स्थायी जीवन-मूल्यों का अन्वेषण

शिक्षा को स्थायी और प्रासंगिक जीवन-मूल्यों की खोज में हमारी सहायता करनी चाहिए। ये मूल्य पूर्वाग्रह मुक्त अन्वेषण तथा आत्म अवधान से आते हैं। बालक को क्या होना चाहिए, इस आदर्श के आरोपण के बिना बालक द्वारा अध्ययन ही उचित शिक्षा है।

मानव समाज में व्याप्त भेदभाव को समाप्त कर समानता स्थापित करना एक महत्त्वपूर्ण मूल्य है। शिक्षा का उद्देश्य यह स्पष्ट करना भी है कि यद्यपि व्यक्तिगत भिन्नता एक सामान्य सार्वभौमिक घटना है, तथापि इसके परिणामस्वरूप मानव-मानव के बीच असमानता नहीं उत्पन्न हो जाती। मनुष्यों के बीच श्रेष्ठता एवं हीनता के भाव को समाप्त कर समन्वित एवं विवेकपूर्ण मनुष्य का निर्माण शिक्षा का ही कार्य है।

5. बौद्धिक विकास

जीवन में क्रमबद्धता बुद्धि से आती है और बुद्धि स्वतंत्रता का उत्पाद है। बुद्धि निरीक्षण तथा आत्मज्ञान की प्रक्रिया से उत्पन्न होती है। व्यक्ति में आंतरिक तथा बाह्य विश्व के प्रति एक प्रबुद्ध और आलोचनात्मक जागरुकता वांछनीय है। तीक्ष्ण और पूर्वाग्रह मुक्त मस्तिष्क के चिन्तन द्वारा ही आलोचनात्मक प्रतिभा का विकास संभव है। किसी बात को स्पष्टत: समझे बिना स्वीकार कर लेना अनुचित है।

प्रत्येक अनुभव, वार्ता तथा पुस्तक में से गूढ़ प्रश्न ढूँढ़ने की योग्यता का विकास अपेक्षित है, क्योंकि ऐसी क्षमता से सम्पन्न व्यक्ति ही समाज के स्वरूप में सकारात्मक बदलाव ला सकते हैं। साथ ही, बौद्धिक प्रतिभा तथा संवेदनशीलता के बीच सामंजस्यपूर्ण सन्तुलन होना चाहिए।

6. अवकाश का उपयोग अधिगम में करना

कृष्णमूर्ति के अनुसार, अवकाश का तात्पर्य पूर्वमान्यताओं, विचारों, ज्ञान तथा इच्छाओं से मुक्त अनासक्त मन से है। ऐसे मन का ही वास्तविक उपयोग सीखने में हो सकता है। बाह्य सत्ता तथा प्रभाव से मुक्त होने के साथ ही हम स्वयं के

विश्वासों, मतों एवं आदर्शों से कैसे बँधे हैं, इसकी समझ भी जरूरी है।

कृष्णमूर्ति ने विद्यालय को अवकाश का केंद्र माना, जहाँ बालक में व्यक्तिगत स्वायत्तता का प्रस्फुटन होता है।

7. सौन्दर्य-बोध का विकास करना

जीने का मतलब संबंधित होना है। यदि सौन्दर्य के प्रति उपयुक्त भावना तथा प्रकृति, संगीत एवं कला के प्रति व्यक्ति में अनुक्रिया का अभाव हुआ तो वह किसी अन्य व्यक्ति, विचार या वस्तु के साथ संबंध नहीं बना सकता। अत: मनुष्य में उच्चस्तरीय सौन्दर्य-बोध का विकास करना भी शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए।

8. पूर्ण एवं उपयोगी मनुष्य का विकास करना

शिक्षा द्वारा ज्ञान और तकनीकी कुशलता के साथ ही बच्चों में मानवता के विकास का भी प्रयास करना चाहिए। अच्छे मनुष्यों के बिना वैसा समाज प्राप्त नहीं हो सकता, जो हिंसा, कुप्रथाओं और सभी प्रकार से भेदभावों से मुक्त हो।

संक्षेप में, वैश्विक दृष्टिकोण एवं अन्वेषण की ललक का विकास तथा मनुष्य मात्र एवं वातावरण की परवाह का विकास शिक्षा के उद्देश्य होने चाहिए।

पाठ्यक्रम—कृष्णमूर्ति के अनुसार, आधुनिक विश्व में कुशल निर्वाह के लिए तकनीकी कुशलता, साथ ही पूर्ण मानव के विकास के लिए उपयुक्त वातावरण प्रदान करना शिक्षा का कार्य है। शिक्षा के इन कार्यों तथा उद्देश्यों को पूरा करने हेतु पाठ्य क्रम में बुद्धि और संवेदनशीलता का विकास करने वाली गतिविधियाँ होनी चाहिए।

पाठ्यक्रम ऐसा हो, जो बालक को जीविकोपार्जन के योग्य बनाए। अतीत की अपेक्षा बालक को वर्तमान से जोड़ने वाले विषय पाठ्यक्रम में अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। कृष्णमूर्ति विज्ञान और धर्म दोनों को पाठ्यक्रम में स्थान देते हैं। उनकी दृष्टि में वातावरण और ब्रह्माण्ड को समझने और सराहने हेतु प्राकृतिक विज्ञान, भौतिक विज्ञान, भूगोल और साहित्य जैसे विषयों का भी महत्त्व है।

शिक्षण विधि—कृष्णमूर्ति ने शिक्षण हेतु किसी नई विधि या प्रविधि का प्रस्ताव नहीं किया। हालाँकि उन विभिन्न विधियों के उपयुक्त उपयोग पर बल दिया जो विद्यार्थी के अधिगम को अधिकतम बनाने में सहायक होते हैं। उनके अनुसार, विभिन्न प्रकार के प्रश्न उठाना और उनका अपना उत्तर खोजना शिक्षित करने की ही प्रक्रिया है। उन्होंने स्वयं निरीक्षण, विचार-विमर्श या संवाद विधि का प्रयोग किया तथा प्रकृति के सान्निध्य में शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया पर बल दिया। उनके संवादों में 'सुकरात विधि' का विस्तृत प्रयोग हुआ है।

परम्परागत विधियाँ निश्चित विचार-प्रतिरूपों पर आश्रित होने के कारण मानसिक स्वतंत्रता समाप्त कर देती हैं। बालकों में आलोचनात्मक चिन्तन तभी विकसित हो सकता है, जब उन्हें भूल करने से रोका न जाय तथा दण्ड का भय न दिया जाय। ऐसा भय पहल, अन्वेषण और बुद्धि-प्रयोग की क्षमता को कुन्द करता है। अत: उपयुक्त विधि के प्रयोग से बच्चों में लचीलापन तथा विवेक का विकास होगा और वे मत, विश्वास और परम्परा की दासता से मुक्त होंगे।

विद्यालय—शिक्षा को आनन्दप्रद होना चाहिए। कृष्णमूर्ति का मानना था कि विद्यालय परिसर में निवास की सुविधा से विद्यार्थियों को भय और तुलना से मुक्त सहज वातावरण में मनोवैज्ञानिक रूपांतरण और स्वयं सीखने के अवसर प्राप्त होते हैं। ऐसे परिवेश में उनमें वांछित मूल्यों का भी संचरण हो सकेगा, जो अंततः समाज को ही लाभान्वित करेगा।

प्रकृति की गोद में शिक्षा अत्यधिक प्रभावकारी होती है। कृष्णमूर्ति का मानना था कि प्रकृति के प्रांगण में ज्ञानेन्द्रियाँ मन को निर्मल करती हैं। उनका विद्यार्थियों के लिए कहना था–

''तारों, स्वच्छ आकाश, पक्षियों तथा पत्तों के आकार को देखो। छाया को देखो। आकाश में विचरते हुए पक्षी को देखो। वृक्ष के नीचे मौन बैठकर स्वयं के साथ तुम अपने मन की गतिविधियों को समझना आरम्भ करते हो और यह कक्षा में जाने के बराबर ही महत्त्वपूर्ण है।''

भय से मुक्ति अनुशासन से नहीं अपितु शांत मन द्वारा संभव है। शांत मन ही स्वयं की समझ प्रदान करता है, जो स्वतंत्रता और शांति का आरम्भ है। विद्यालय वह स्थान होना चाहिए, जहाँ विद्यार्थी विचार-विमर्श एवं मौन द्वारा स्वयं को एवं अपनी वास्तविक रुचि को पहचान सकें। वहाँ तुलना और प्रतिस्पर्द्धा के स्थान पर सहयोग और प्रेम को बढ़ावा मिलना चाहिए।

कृष्णमूर्ति के शिक्षा-दर्शन पर आधारित विद्यालयों में बालकों को परस्पर अंतःक्रिया, निरीक्षण और चिन्तन तथा श्रेष्ठता की भावना से मुक्त शिक्षकों से अंतक्रिया की पूर्ण स्वतंत्रता होती है। शिक्षक और शिक्षार्थी अपने आंतरिक और बाह्य संसार का साथ मिलकर अन्वेषण करते हैं। इस प्रक्रिया में स्वतंत्रता और समानता के भाव मौजूद रहते हैं अर्थात् भावनाओं की स्वतंत्र अभिव्यक्ति होती है।

कक्षा का आकार—उपयुक्त शिक्षा बड़े समूह में नहीं दी जा सकती। प्रत्येक बालक के अध्ययन के लिए धैर्य, सावधानी तथा सम्यक् बुद्धि की आवश्यकता होती है। अतः कक्षा-समूह का आकार छोटा होना चाहिए।

शिक्षक—उचित शिक्षा शिक्षक से ही आरम्भ होती है। सभी प्रकार के पूर्वाग्रह और सत्ता-भाव से मुक्त होकर शिक्षक को सर्वप्रथम प्रत्येक बालक का पूर्ण ध्यान से निरीक्षण करना चाहिए तथा उनकी सहायता करनी चाहिए। जिस क्षण व्यक्ति पद का मद छोड़ देता है, वह साझा जीवन जीने लगता है और तभी सहयोग और प्रेम उत्पन्न होते हैं। विद्यार्थी के साथ शिक्षक को ऐसी ही साझेदारी बनानी चाहिए। बालक अपनी पूर्ण अपूर्वता के साथ शिक्षक के ध्यान की विषयवस्तु होता है।

भय मन और हृदय को कमजोर करता है। अतः यह शिक्षक का दायित्व है कि वह बालक को परिवार, समाज या अध्यापकों के सभी प्रकार के प्रभुत्व के भय से मुक्त होने में सहायता करे। स्वयं का ज्ञान इस प्रकार की मुक्ति की शुरुआत है, जो अंततः शांति को जन्म देता है। यहाँ 'स्वयं' का आशय अन्य लोगों, वस्तुओं, विचारों और प्रकृति के साथ संबंधित 'स्व' से है। शिक्षक को स्वयं को शिक्षित करना चाहिए। उसे चिन्तन द्वारा अपनी अभिवृत्तियों तथा अपने जीवन के भय को समझना चाहिए। भ्रमित और संकीर्ण दृष्टिकोण वाला शिक्षक अपने विद्यार्थियों को भी ऐसा ही बना सकता है।

इस प्रकार, कृष्णमूर्ति ने अपने शिक्षा-दर्शन में मनोवैज्ञानिक रूप से मुक्त और बुद्धिमान तथा वास्तविक अर्थों में शिक्षक को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। अध्यापक सम्पूर्ण मानव जाति के लिए उत्तरदायी होता है। शिक्षकों में अपेक्षित समर्पण भाव आ सके, इसके लिए उनका वातावरण ऐसा होना चाहिए, जहाँ वह पारिवारिक या व्यक्तिगत सुरक्षा जैसी चिन्ताओं से मुक्त रह सकें।

शिक्षक की विशिष्ट योग्यताएँ—चूँकि शिक्षक का कार्य सूचना देने के अतिरिक्त प्रज्ञा और सत्य के लिए मार्गदर्शन करना भी है। अत: सच्चा शिक्षक अभ्यंतर से सतर्क, समृद्ध और स्फूर्तिवान होता है। वह महत्त्वाकांक्षी नहीं होता। वह निरंतर स्वयं को उचित प्रकार से शिक्षित करता रहता है, क्योंकि जो कुछ वह स्वयं होता है, वही वह दूसरों को देता है। रुचि न होने पर यह बेहतर है कि व्यक्ति अध्यापन छोड़ दे।

शिक्षक-सहयोगी संबंध—प्रधानाध्यापक और अध्यापकों के बीच समानता का वातावरण वांछित है, न कि भय का। आपसी संघर्ष और शिकायत से बचना चाहिए।

शिक्षक-अभिभावक संबंध — कृष्णमूर्ति मानते थे कि अभिभावकत्व का भी प्रशिक्षण अपेक्षित है, जिसमें शिक्षकों की भी सहभागिता होनी चाहिए। आज बालकों के व्यक्तित्व की समग्रता में जो कमी शेष रह जाती है, उसमें शिक्षा प्रणाली के साथ ही अभिभावकों का भी दोष है। अभिभावक बच्चों को अपनी इच्छानुरूप ढालने के दबाव में रखते हैं, जिससे व्यक्तित्व और समाज दोनों का विकास बाधित होता है। शिक्षा सिर्फ आर्थिक सुरक्षा और अच्छे विवाह के लिए नहीं होती, जैसा कि आधुनिक अभिभावक चाहते हैं।

अध्यापक का दायित्व शैक्षिक विषयों और सांसारिक ज्ञान प्रदान करने के अतिरिक्त सामाजिक विकास का भी होता है। अत: उसे अभिभावकों के निरंतर सम्पर्क में रहकर उनका विश्वास प्राप्त करना चाहिए ताकि अभिभावक अपने बच्चों की उपयुक्त शिक्षा हेतु सक्रिय हो सकें।

कृष्णमूर्ति के शिक्षा-दर्शन की प्रासंगिकता

(1) अध्यापक-छात्र संबंध में सुधार वर्तमान शिक्षा-प्रणाली हेतु अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। ऐसा संबंध शिक्षण और अधिगम के लिए अनुकूल वातावरण के विकास में सहायक होगा।

(2) कृष्णमूर्ति ने शिक्षा में अभिभावकों की प्रत्यक्ष सहभागिता की बात की। इससे अभिभावक शिक्षित तो होंगे ही, वे अपने दायित्वों को भी बेहतर ढंग से समझ सकेंगे।

(3) कृष्णमूर्ति शिक्षा द्वारा मनोवैज्ञानिक क्रान्ति लाने की बात करते हैं, जिसकी आज सर्वाधिक आवश्यकता है।

(4) कृष्णमूर्ति यह विश्वास करते हैं कि सही शिक्षा द्वारा मानव-समाज में समानता स्थापित की जा सकती है। इस समानता का दूरगामी प्रभाव निश्चय ही अनेक सामाजिक समस्याओं को कम करने में सहायक होगा। मूल्यों के क्षरण के इस युग में शिक्षा प्रणाली द्वारा सामाजिक रूप से महत्त्वपूर्ण ऐसे ही अन्य मूल्यों का संचरण इस संकट को कम करने में सक्षम सिद्ध होगा।

(5) अन्य शिक्षा-दार्शनिकों की भाँति कृष्णमूर्ति ने भी सुसमन्वित व्यक्तित्व के विकास को शिक्षा का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य माना है जिसकी प्रासंगिकता स्वयंसिद्ध है।

(6) निरीक्षण की योग्यता का उपयुक्त विकास भी बालकों को अच्छाई में पुष्पित होने का अवसर देगा। इससे उनके जीवन का समग्र विकास हो सकेगा।

(7) आज अधिकांशत: विद्यालयों में बड़े समूह में शिक्षण किया जाता है। इससे व्यक्तिगत भिन्नताएँ प्राय: उपेक्षित रहती हैं। इस शिक्षा दर्शन में छोटे समूह में शिक्षण का प्रस्ताव रखा गया है, जहाँ शिक्षक अपने हर विद्यार्थी पर ध्यान दे सकें।

(8) विभिन्न शैक्षिक मुद्दों पर नवीन दृष्टिकोण का उन्मेष करने की दृष्टि से भी यह शिक्षा-दर्शन प्रासंगिक है।

निष्कर्ष

आधुनिक तीव्र सामाजिक परिवर्तनों के दौर में मूल्य-चयन का संकट है, जिसने शैक्षिक समस्याओं को भी जन्म दिया है। उचित शिक्षा का उत्स उपयुक्त दार्शनिक दृष्टिकोण में निहित होता है। व्यक्ति के विभिन्न पक्षों में समन्वय लानेवाली शिक्षा एक रचनात्मक प्रक्रिया है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं का एक सीमा तक विकास तो करती है, किन्तु एक समग्र व्यक्तित्व के विकास में असफल है। इस दृष्टि से कृष्णमूर्ति का शिक्षा-दर्शन हम सबके ध्यानाकर्षण की अपेक्षा रखता है।

इस दर्शन की सर्वाधिक समसामयिक प्रासंगिकता इस बात में निहित है कि यह व्यक्तिगत स्तर पर परिवर्तन लाने की बात करता है और व्यक्ति ही मानव जाति का प्रतिनिधि होता है। यह शिक्षा की प्रक्रिया द्वारा ही व्यक्ति का सकारात्मक रूपांतरण संभव मानता है और तभी वर्तमान वैश्विक परिवेश सुखमय और शांतिपूर्ण हो सकता है।

सन्दर्भ

कृष्णा, पी. 2000. *एजुकेशन, साइंस एण्ड स्पिरिचुएलिटी.* द थियोसोफिकल पब्लिशिंग हाउस. चेन्नई.

कृष्णमूर्ति, जे. 1984. *शिक्षा संवाद : छात्रों और शिक्षकों से.* कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन इण्डिया. वाराणसी.

_____ 1979. *शिक्षा एवं जीवन का महत्त्व, वाराणसी*, कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन इण्डिया.

चारी, ए. 1980. *जे. कृष्णमूर्ति, फ्रीडम एण्ड एजुकेशन,* जर्नल ऑफ इंडियन एजुकेशन, जुलाई, 1980.

मुखर्जी, जे. 2006. *रेलेवेन्स ऑफ जे. कृष्णमूर्ति इन एजुकेशन,* भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, 25(1).

शिवपुरी, वी. 2006. *जे. कृष्णमूर्ति ऑन एजुकेशन,* भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, 25 (1).

हर्जबर्गर, आर. 2004. *कृष्णमूर्ति ऑन एजुकेशन*, राजपूत, जे. एस. (सं.), इन्साइक्लोपीडिया ऑफ इंडियन एजुकेशन, वाल्यूम-1, नई दिल्ली : एन. सी. ई. आर. टी.